वर्ष-5 अंक-3 जुलाई-सितम्बर, 2015 मूल्य - ₹ 25

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

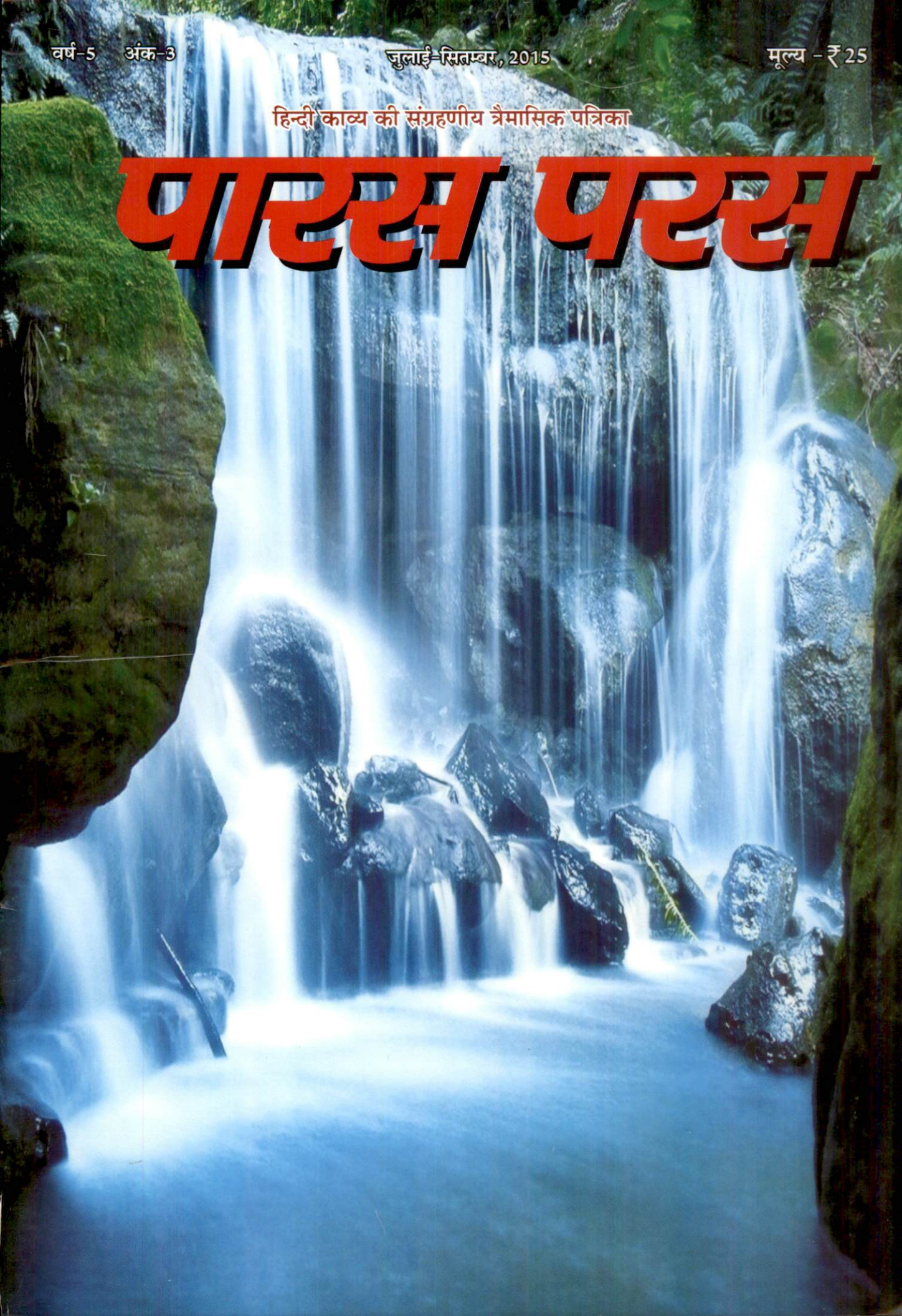

सृजन स्मरण

भगवती चरण वर्मा

जन्म -30 अगस्त 1903 निधन-5 दिसम्बर 1981

मेरी भूलों से मत उलझो, जनम-जनम का मैं, अज्ञानी !
काँटों से निज राह सजा कर,
मैंने उस पर चलना सीखा।
श्वासों में निःश्वास बसा कर,
मैंने उस पर पलना सीखा।
गलना सीखा, मैंने, निशि दिन,
निज आँखों का पानी बन कर।
अपने घर में आग लगा कर,
मैंने उस में जलना सीखा।।
मुझे नियति ने दे रक्खी है, पागलपन से भरी जवानी,
मेरी भूलों से मत उलझो,जनम-जनम का मैं, अज्ञानी।।

वर्ष : 5 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2015 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल

डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक

डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक

सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय

538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग

अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि., लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर सी-49, बटलर पैलेस कालोनी, जापलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

पुण्यस्मरण		04
भावना से	–पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	05

श्रद्धासुमन

.....'बाबू जी' मेरे नहीं रहे	– डा अनिल कुमार पाठक	06

कालजयी

मुझे किसी का प्यार चाहिए	– गुरुभक्त सिंह 'भक्त'	07
कुछ सुनलें, कुछ अपनी कहलें	– भगवती चरण वर्मा	08
एक पल ही जियो	– डा. श्रीपाल सिंह 'क्षेम'	09
हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान	– भारतेन्दु हरिश्चंद्र	10
हमारी हिन्दी	– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	11
हिन्दी है, भारत की बोली	– गोपाल सिंह 'नेपाली'	12

समय के सारथी

प्रिय मेरा उस पार	– मृदुल शर्मा	13
सत्कर्मों की राह	– डॉ. दिनेश चन्द्र अवस्थी	14
युग का देवता	– कुँवर श्रीप्रकाश सिंह	15
हिन्दी	– डॉ तुकाराम वर्मा	16
जीवन का संदेश	– नरेन्द्र श्रीवास्तव	17
कैसे गीत सुनायें	– अशोक 'अंजुम'	18
पहरों, हम सोचते रहे	– चक्रपाणि पाण्डेय	19
जियो, स्वदेश के लिए	– डा.उमाशंकर शुक्ल'शितिकंठ'	20
अपने–अपने में	– राकेश 'चक्र'	21
हम अपने मन के हों, स्वामी	– नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'	22
महाकवि तुलसीदास	– महेश प्रसाद पाण्डेय'महेश'	23
यातना	– डा.दाऊ जी गुप्त	24
तृष्णा का मान	– विजय शंकर शुक्ल	25
काव्य की सर्जना	– कृष्ण मुरारी 'विकल'	26
अमावसों के संरक्षण में	– राजेन्द्र वर्मा	27
आञ्जनेयं–नमामि	– डा. अनन्तराम मिश्र'अनन्त'	28
भागीरथी जल चाहिए	– श्याम नारायण श्रीवास्तव	29

नारी स्वर

शत बार नमन, शत बार नमन	– श्रीमती कमलेश श्रीवास्तव	30
अनुरागी प्रिय	– डा. ममता शुक्ला	31
भूले हुए हो	– इन्दिरा मोहन	32
वो बहारों के दिन	– डा.ऋचा सत्यार्थी	33
बँटवारा	– श्रीमती सुनीता यादव	34
बृद्धाश्रम	– श्रीमती साधना श्रीवास्तव	35

नवोदित रचनाकार

मैं छोटा–सा एक सिपाही	– भारतेन्दु मिश्र	36
डर रहा हूँ, मैं	– पं. प्रवीण त्रिपाठी	37
जीवन सँवरता	– जगदीश शुक्ल	38
पास आ जाते	– कृष्ण कुमार वर्मा	39
धरती स्वर्ग बनाओ	– विष्णु कुमार शर्मा कुमार	40

भाषा जल प्रवाह की तरह होती है

बचपन में मेरी माँ, रात्रि में सोने के समय, मुझे कोई न कोई कहानी ज़रूर सुनाती थीं। इनमें से कुछ कहानियाँ तेनालीराम से जुड़ी थीं। इन्हीं कहानियों में से एक कहानी इस प्रकार थी कि एक दिन किसी अन्य राज्य का एक विद्वान् व्यक्ति राजा कृष्णदेव राय के दरबार में आया। उसने भरे दरबार में यह चुनौती दी कि राजन! क्या आपके दरबार में कोई ऐसा व्यक्ति है जो मेरी मातृभाषा जान सकता है? आगंतुक बहुत सी भाषाओं का विद्वान था। थोड़ी देर में वह एक–एक करके विभिन्न भाषाओं में धारा–प्रवाह व्याख्यान देने लगा। वह जिस भाषा में बोलता, ऐसा प्रतीत होता कि वही उसकी मातृभाषा है। दरबारियों के प्रयास करने के बाद भी उस विद्वान की मातृभाषा का पता नहीं चल सका। राज दरबार में सन्नाटा छा गया। मायूस होकर राजा ने तेनालीराम की ओर देखा। राजा की मनःस्थिति भाँपकर तेनालीराम बोले, ''महाराज! इन महाशय से कुछ दिनों के लिए राज्य–अतिथिगृह में रहने का अनुरोध किया जाय, साथ ही मुझे इनकी सेवा का अवसर भी प्रदान किया जाय।'' राजा की आज्ञानुसार, तेनालीराम उस विद्वान् के साथ रहकर उसकी सेवा करने लगे किन्तु दो–तीन दिन लगातार उस व्यक्ति के साथ रहने पर भी उन्हें उसकी मातृभाषा जानने में सफलता नहीं मिली। अंततः चौथे दिन जब वह विद्वान् एक वृक्ष की छाया में बैठा था, तेनालीराम ने उसके पैर छूने के बहाने उसके पाँव में काँटा चुभा दिया। वह विद्वान पीड़ा से कराह उठा और अपनी मातृभाषा में "अम्मा–अम्मा" कहते हुए चीख पड़ा। तेनालीराम तुरन्त ही समझ गये कि इस विद्वान की मातृभाषा तमिल है।

इस कहानी को दोहराने का आशय और उद्देश्य मात्र यह है कि किसी विपत्ति या दुखद पलों में सबसे पहले या कहें कि केवल माँ व उससे जुड़ी सारी बातों, चाहे वह मातृभाषा हो या मातृभूमि हो, की ही याद आती है। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित है कि – "आपदि मातैव शरणम्'' तथा "माता समं नास्ति शरीरपोषणम्" यानि संकट में माँ की ही शरण मिलती है क्योंकि माँ के समान शरीर का पोषण करने वाला कोई नहीं है। इससे यह ध्वनित होता है कि माँ का सम्बन्ध ममता, स्नेह एवं करुणा यानि व्यक्ति के हृदय पक्ष से है और इन भावों की सटीक अभिव्यक्ति तथा इसके विस्तार का माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है क्योंकि सामान्य परिस्थितियों में एक सन्तान प्रारम्भ से ही अपनी माँ के साथ रहती है और उसी के द्वारा उसका पालन–पोषण होता है। वह माँ की ही भाषा को सुनती है, समझती है, तथा बोलती है।

मनुष्य के जीवन में माँ और उनसे जुड़ी सभी बातों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से जब हम मातृभाषा के बारे में विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी महत्ता सदैव से रही है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम चरित मानस की रचना के समय यह संकल्प लिया कि "भाषाबद्ध करौं मैं सोई" और इसीलिये संस्कृत जैसी भाषा के श्रेष्ठ विद्वान् होने के बाद भी उन्होंने संस्कृत या अन्य भाषाओं के स्थान पर जनभाषा अथवा मातृभाषा को वरीयता प्रदान की, भले ही तात्कालिक तथाकथित विद्वान लोगों ने उनकी रचना को "भदेस" कहकर उसका उपहास किया है। महात्मा कबीरदास जी के शब्दों में "संसकीरत है, कूप जल, भाखा बहता नीर" यानि भाषा बहते जल के समान है जिसमें एक प्रवाह है, एक जीवन्तता है। यदि यह भाषा मातृभाषा है तो निश्चित रूप से उसमें जीवन्तता के साथ ही आत्मीयता भी होना स्वाभाविक है। मातृभाषा की महत्ता के बारे में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहा है–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल"।।

मातृभाषा की उक्त पक्षधरता का आशय यह कदापि नहीं कि अन्य भाषाओं की उपेक्षा की जाय। मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का ज्ञान रखना या उसमें प्रवीण होना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु अपनी सहृदय अभिव्यक्तियों यथा सुख–दुख आदि मनोवेगों का प्रकटीकरण जिस रूप में अपनी मातृभाषा में सम्भव है वैसा किसी अन्य भाषा में सम्भव नहीं हो सकता है।

सामान्यतः मातृभाषा का मूल हमारी बोलचाल की भाषा से जुड़ा होता है। पूर्व साहित्यकारों की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वे अत्यन्त सरल एवं बोलचाल की भाषा के माध्यम से अपनी बात रख देते थे किन्तु इसके विपरीत वर्तमान में दुरूह शब्दावलियों के माध्यम से रचना को उत्कृष्ट दिखलाने का प्रयास किया जा रहा है जिन्हें समझना कदाचित सामान्य व्यक्ति के लिये आसान नहीं है। मातृभाषा हिन्दी, संस्कृत सहित अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने अनुरूप ढालने में सफल रही है किन्तु हम विभिन्न शब्दों को गढ़ने या पारिभाषिक शब्दावलियों को विरचित करने के

फेर में इन शब्दों की सरलता व सहजता को दुरूहता में परिवर्तित कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि हिन्दी भाषा को सरल शब्दों की भाषा के बजाय दुरूह भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे यह भाषा लोगों से दूर हो और उनका इसके प्रति आकर्षण कम होता जाय।

भाषा बहते जल के समान है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि भाषा में यह गुण होना चाहिये कि वह सदानीरा के समान यदि कुछ बातों को छोड़े तो बहुत सी अन्य बातों को अपने प्रवाह में समेट ले, सम्मिलित कर ले। अपनी मातृभाषा हिन्दी के सन्दर्भ में भी यही बात होनी चाहिये। भाषा की प्रवाहमानता के परिप्रेक्ष्य में ही उर्दू, संस्कृत, फारसी आदि के ऐसे शब्द जो जनबोली के रूप में प्रचलित हो गये हैं, उन्हें हिन्दी भाषा में सम्मिलित किया जाना, बुरा नहीं है। यहाँ तक कि अंग्रेजी भाषा के भी कतिपय शब्दों, जो हमारी जनभाषा या जनबोली के रूप प्रचलित हैं, से भी परहेज नहीं होना चाहिये।

सामान्य रूप से हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं का विकास एक साथ सम्भव है और इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं दिखायी पड़ता है। सभी भारतीय भाषाओं के ऊपर आसन्न संकट अंग्रेजी से है क्योंकि कतिपय तथाकथित लोगों का यह पूर्वाग्रह है कि अंग्रेजी के बिना वैज्ञानिक प्रगति अवरुद्ध हो जायेगी और हम आधुनिक विज्ञान के साथ ही अंग्रेजी भाषा एवं उसके प्रचुर साहित्य के लाभ से वंचित हो जायेंगे। किन्तु ऐसे लोगों का यह मानना ठीक नहीं है। अंग्रेजी को हटाकर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को मौका दिया जाना आवश्यक है क्योंकि यह सन्दर्भ हमारे राष्ट्रीय गौरव व आत्म सम्मान से जुड़ा हुआ है।यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन है कि किसी समय में स्वयं इंगलैण्ड में लैटिन या फ्रांसीसी भाषा के प्रति जबरदस्त आकर्षण था किन्तु अंग्रेजी जन–सामान्य ने इन्हें कभी राष्ट्रभाषा नहीं माना बल्कि वहाँ के साहित्यकारों ने अंग्रेजी भाषा को सामर्थ्यवान् बनाते हुए सम्मानजनक स्थान दिलाया किन्तु इसके विपरीत हमने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करते हुए अंग्रेजी को इसके ऊपर प्रतिष्ठित किया है और आज भी हम उसके मोह से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। यह सही है कि एक भाषा के रूप में अंग्रेजी का विरोध किया जाना उचित नहीं है क्योंकि भाषा ज्ञान की दृष्टि से किसी भी भाषा को, चाहे वह अंग्रेजी हो या फ्रेन्च, चीनी, रूसी या विश्व की कोई भी भाषा हो, पढ़ना तथा उसका ज्ञान प्राप्त करना अच्छी बात है किन्तु जनभाषा अथवा जनबोली अर्थात मातृभाषा के स्थान पर किसी अन्य भाषा को जबरन थोपना और उसका यह आधार लेना कि थोपी जाने वाली भाषा अत्यन्त समृद्ध है और सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान की प्रवाहिका है, किसी भी दृष्टि से तर्क संगत या औचित्यपूर्ण नहीं है क्योंकि मातृभाषा हिन्दी स्वयं में ज्ञान–विज्ञान के लिये सम्पन्न है। यदि इसमें अन्य शब्दावलियों का समावेश आवश्यक एवं अपरिहार्य है तो उसे, जैसा कि पूर्वोल्लिखित है, हमारी जनबोली में सम्मिलित या उसके निकट के अन्य शब्दों को हिन्दी में समाहित करते हुए उसे मान्यता प्रदान की जा सकती है।

यदि हिन्दी भाषा को प्रवाहित होने दिया जाय यानि किसी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न किया जाय तो हिन्दी भाषा स्वयं ही अपना विकास करने में समर्थ है और वह स्वयं को भारत ही नहीं विश्व भाषा के रूप में स्थापित करने में सक्षम हो सकेगी। मैं अपनी बात हिन्दी साहित्य के पुरोधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं प्रख्यात कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ समाप्त करना चाहता हूँ–

''मन के धन व भाव हमारे हैं, खरे ।
जोड़–जोड़ कर जिन्हें पूर्वजों ने भरे ।।
उस भाषा में जो है, इस स्थान की ।
उस हिन्दी में जो है, हिन्दुस्तान की ।।
उसमें जो कुछ रहेगा वही हमारे काम का ।
उससे ही होगा हमें गौरव अपने नाम का ।।'' (आचार्य राम चन्द्र शुक्ल)

"दो वर्तमान का सत्य सरल, सुन्दर भविष्य के सपने दो।
हिन्दी है, भारत की बोली तो अपने आप पनपने दो।।'' श्री गोपाल सिंह नेपाली

शुभ कामनाओं के साथ

डा0 अनिल कुमार

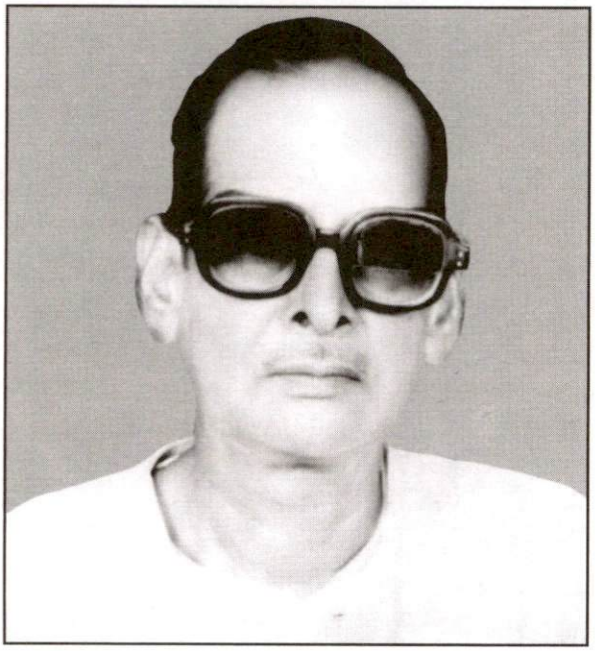

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म- 17 जुलाई 1932
निधन- 23 जनवरी 2008

"तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण–कण में व्यापी बसन्त।।"

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कॉलेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिये **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी के जन्म दिवस पर विनम्र श्रद्धांजलि

भावना से

- पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

भाव मेरे शून्यता में, जो पले थे, मौन हो,
आज आना है, पड़ा, तुमको धरा की राह पर।
जी सको तो जी सको, इस धूल ही में,
अन्यथा संसार तो, तुमको जिलाता है, नहीं।।

तारकों के नीड़ में, जिसका मधुर विश्राम होता,
आज चलना है, पड़ा, उसको कठिन पाषाण पर।
चल सको तो चल सको, इन प्रस्तरों पर,
अन्यथा संसार पथ पर पुष्प बिखराता नहीं।।

फूल के पथ पर चला जो एक कोमल भाव लेकर,
आज चलना है, पड़ा, उसको कंटीली झाड़ियों में।
पी सको तो पी सको रस आँसुओं का,
अन्यथा संसार तो, मधु को पिलाता है, नहीं।।

चाँद की मधु– रश्मियों में जो लिपट सोता रहा,
आज रुकना है, पड़ा, उसको विरह के देश में।
मिल सको तो मिल सको, उर की व्यथा से,
अन्यथा संसार तो प्रिय से मिलाता है, नहीं।।

❖❖❖

कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबू जी' मेरे नहीं रहे

- डा. अनिल कुमार पाठक

सुनता हूँ, लोगों को कहते, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।
यह कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।।

है, सच क्या? उनको पता नहीं, वे अक्षयवट हैं, लता नहीं,
'अक्षय' कैसे कवलित होकर, यूँ काल–गाल में समा रहे।
यह कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे ।।

वे हैं, अनादि, वे हैं, अनन्त, कण–कण के व्यापी, वे बसन्त,
वे नहिं अक्षम कोई पीत–पर्ण, जो शरत्काल में बिखर रहे।
यह कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।।

था, लक्ष्य नीड़ का नवल सृजन, रखा जोड़कर इक–इक तृण,
शाश्वत शिल्पी इस जीवन के, सबके ही आधार रहे।
यह कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।।

है, आदि, मध्य औ' अन्त नहीं, उन जैसा कोई सन्त नहीं,
पाखण्ड, कपट से दूर सदा, बनकर अजातरिपु खड़े रहे।
यह कोई मुझसे नहीं कहे, 'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।।

❖❖❖

मुझे किसी का प्यार चाहिए

- गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

मुझे किसी का प्यार चाहिए।
देख रहा था क्या–क्या सपना,
नहीं किसी को पाया अपना।
जला करें बत्ती सा चाहे,
मुझे स्नेह– संसार चाहिए।।

दृग मंडल शनि–वृत ग्रसित हों,
विरह व्यथा की ताप अमित हो।
सूख गई हो जो काँटा सी,
उस छवि से दृग चार चाहिए।।

व्याकुलता नभ चूम रही हो,
छटा– घटा सी घूम रही हो।
मुझे डुबोने को ऐसा ही,
यौवन–पारावार चाहिए।।

सावन– भादों बरसें, झर– झर,
ठंडा ताप न कर पायें, मर।
डूब जाय जिसमें सागर भी,
सारंग को अंगार चाहिए।।

अलकें जिसकी स्वर्ग निसेनी,
आँखों में हैं, जहाँ त्रिवेनी।
वे तरनी जो पार लगा दें,
तरुणी–संगम–धार चाहिए।।

❖❖❖

कुछ सुनलें, कुछ अपनी कहलें

- भगवती चरण वर्मा

(1)

कुछ सुनलें, कुछ अपनी कहलें।
जीवन सरिता की लहर–लहर,
मिटने की बनती, यहाँ प्रिये।
संयोग क्षणिक, फिर क्या जाने,
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?
पल भर तो साथ–साथ बहलें।
कुछ सुनलें, कुछ अपनी कहलें।।

(2)

आओ कुछ ले लें, औ दे लें।
हम हैं, अजान–पथ के राही,
'चलना' जीवन का सार प्रिये।
पर दुःसह है, अति दुःसह है,
एकाकीपन का भार, प्रिये।
पल भर हम तुम मिल, हँस खेलें।
आओ कुछ ले लें, औ' दे लें ।।

(3)

हम–तुम अपने में लय कर लें।
उल्लास और सुख की निधियाँ,
बस इतना इनका मोल प्रिये।
करुणा की कुछ नन्हीं बूँदें,
कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये।
सौरभ से अपना उर भर ले।
हम–तुम अपने में लय कर लें।।

(4)

हम तुम जी–भर खुलकर मिल लें।
जग के उपवन की यह मधुश्री,
सुषमा का सरस बसन्त प्रिये।
दो साँसों में बस जाय, और–
ये साँसें बनें अनन्त प्रिये।
मुरझाना है, आओ खिल लें।
हम तुम जी भर, खुल कर मिल लें।।

❖❖❖

एक पल ही जियो

- डा. श्री पाल सिंह 'क्षेम'

एक पल ही जियो, फूल बनकर जियो,
शूल बनकर ठहरना नहीं जिन्दगी ।
अर्चना की सँजोये हुए अंजली,
तुम किसी देवता से मिलो तो सही।
जिन्दगी की यहाँ अनगिनत डालियाँ,
तुम किसी पर सुमन बन खिलो तो सही।
एक पल ही जियो, तुम सुरभि बन जियो,
धूल बन कर उमड़ना नहीं जिन्दगी।
तम–भरी वीथियों के अधूरे सपन,
कुमकुमी बाँसुरी पर बजाते चलो ।
रात रोये हुए फूल की आँख में,
ज्योति की नीव किरण तुम सजाते चलो ।
एक पल ही जियो, प्रात बन कर जियो,
रात बन कर उतरना नहीं जिन्दगी ।
चेतना के किसी भी क्षितिज से उठो,
याचना के नयन–कोर परसा करो।
जिस लहर पर उड़ो, जिस डगर पर बहो,
कामना की सुधा–बूँद बरसा करो ।
एक पल ही जियो,तुम जलद बन जियो,
बज्र बन कर घहरना नहीं जिन्दगी ।
वेदना की लहर में डुबाये न जो,
धार में डूबते को किनारा बने।
शोक जब श्लोक की पूनमी छाँव में,
पंथ–हारे हुए को किनारा बने।
एक पल ही जियो, गीत बनकर जियो,
अश्रु बनकर बिखरना नहीं जिन्दगी।
काल के हाथ पर भाव की आरती–
बन सदा स्नेह से लौ लगाते चलो,
देह को ज्योति–मंदिर बनाते चलो,
साँस की हर लहर जगमगाते चलों।
एक पल ही जियो, दीप बन कर जियो,
धूम बनकर घुमड़ना नहीं जिन्दगी।

❖❖❖

हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

- भारतेन्दु हरिश्चंद्र

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

पढ़े संस्कृत जतन करि, पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, कहि न सकत एक बात।।

उन्नति पूरी है, तबहि, जब घर उन्नति होय।
निज सरीर उन्नति किए, रहत मूढ़ सब लोय।।

गुरु सिखवत बहु भाँति लौं, जदपि बालकन ज्ञान।
पै माता–शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान।।

हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। **–महर्षि दयानंद**

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक हैं। **–महात्मा गाँधी**

राष्ट्रभाषा के प्रचार को मैं राष्ट्रीयता का अंग मानता हूँ। **– डा. राजेन्द्र प्रसाद**

हिन्दी स्वयं अपनी ताकत से बढ़ेगी। **–पं. जवाहर लाल नेहरू**

हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीयता का प्रचार है। **–राजर्षि टंडन**

हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है। **–सुमित्रा नंदन पंत**

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, वह तो है ही। **–कन्हैयालाल मा. मुंशी**

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती हैं। **–मैथिलीशरण गुप्त**

मेरा आग्रहपूर्वक कथन है कि अपनी सारी मानसिक शक्ति हिन्दी भाषा के अध्ययन में लगयें हम यही समझें कि हमारे प्रथम धर्मों में से एक धर्म यह भी है। **–विनोबा भावे**

❖❖❖

हमारी हिन्दी

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(1)

मन के धन वे भाव, हमारे हैं, खरे।
जोड़–जोड़ कर, जिन्हें, पूर्वजों ने भरे।।
उस भाषा में जो हैं, इस स्थान की।
उस हिंदी में जो हैं, हिन्दुस्तान की।।
उसमें जो कुछ रहेगा वही हमारे काम का।
उससे ही होगा, हमें, गौरव, अपने नाम का।।

(2)

'हम' को करके व्यक्त, प्रथम संसार से।
हुई जोड़ने हेतु, सूत्रा जो प्यार से।।
जिसे थाम हम, हिले–मिलें, दो –चार से।
हुए, मुक्त हम, रोने के कुछ भार से।।
उसे छोड़कर और के बल उठ सकते हैं,नहीं।
पड़े रहेंगे, पता भी नहीं लगेगा, फिर कहीं।।

(3)

पहले–पहल पुकारा था, जिसने जहाँ।
जिन नामों से जननि प्रकृति को,वह वहाँ।।
सदा बोलती उनसे ही, यह रीति है।
हमको भी सब भाँति उन्हीं से प्रीति है।।
जिस स्वर में हमने सुना, प्रथम प्रकृति की तान को।
वही सदा से प्रिय हमें और हमारे कान को।।

(4)

भोले–भोले देश भाइयों से जरा।
भिन्न लगें, यह भाव अभी जिनमें भरा ।।
जकड़ मोह से गए,अकड़ कर जो तने।
बानी–बाना बदल बहुत बिगड़े बने।।
धरते नाना रूप जो, बोली अद्भुत बोलते।
कभी न कपट–कपाट को, कठिन कंठ के खोलते।।

(5)

अपनों से हो और जिधर वे जा बहें।
सिर ऊँचे निज नहीं, पैर पर पा रहें।।
इतने पर भी बने चले जाते बड़े।
उनसे जो हैं ,आस–पास उनके पड़े।।
अपने को भी जो भला अपना सकते हैं, नहीं।
उनसे आशा कौन सी की जा सकती है, कहीं?

(6)

अपना, जब हम भूल–भूलते आपको,
हमें भूलता जगत हटाता पाप को।।
अपनी भाषा से बढ़कर अपना कहाँ?
जीना जिसके बिना, न जीना हैं ,यहाँ।।
हम भी कोई थे, कभी, अब भी कोई हैं, कहीं।
यह निज वाणी–बल बिना विदित बात होगी, नहीं।।

❖❖❖

हिन्दी है, भारत की बोली

- गोपाल सिंह 'नेपाली'

दो वर्तमान का सत्य, सरल ,
सुन्दर भविष्य के सपने दो।
हिन्दी है, भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो।।
यह दुखड़ों का जंजाल नहीं,
लाखों मुखड़ों की भाषा है।
थी, अमर शहीदों की आशा,
अब जिन्दों की अभिलाषा है।
मेवा है, इसकी सेवा में,
नयनों को कभी न झँपने दो।।
क्यों काट रहे, पर पंछी के,
पहुँच न अभी यह गाँवों तक।
क्यों रखते हो सीमित इसको,
तुम सदियों से प्रस्तावों तक।
औरों की भिक्षा से पहले,
तुम इसे सहारे, अपने दो।।
श्रृंगार न होगा, भाषण से,
सत्कार न होगा, शासन से।
यह सरस्वती है, जनता की,
पूजो, उतरो सिंहासन से।
तुम इसे शान्ति में खिलने दो,
संघर्ष– काल में तपने दो।।
जो युग–युग से रह गए अड़े,
मत उन्हीं अक्षरों को काटो।
यह जंगली– झाड़ न, भाषा है,
मत, हाथ–पाँव इसके छाँटो।
अपनी झोली से कुछ न लुटे,
औरों को इसमें खपने दो।।
इसमें मस्ती पंजाब की,
गुजरात की है, कथा मधुर।
रसधार देववाणी की है,
मंजुल बँगला की व्यथा मधुर।
साहित्य फलेगा–फूलेगा,
पहले पीड़ा से कँपने दो।।
नादान नहीं थे, हरिश्चंद्र,
मतिराम नहीं थे, बुद्धिहीन।
जो कलम चलाकर हिन्दी में,
रचना करते थे, नित नवीन।
इस भाषा में हर 'मीरा' को,
मोहन की माला जपने दो।।
प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो,
सदियों की बनी बिगाड़ो मत।
कवि, सूर, बिहारी, तुलसी का,
यह बिरुवा नरम उखाड़ो मत।
भण्डार भरो,जन–मन की हर–
हलचल, पुस्तक में छपने दो।।
मृदु भावों से हो हृदय भरा,
तो गीत कलम से फूटेगा।
जिसका सिर सूना–सूना हो,
वह अक्षर पर ही टूटेगा।
अधिकार न छीनो मानस का,
वाणी के लिए कलपने दो।।
बढ़ने दो इसे सदा आगे ,
हिन्दी जन–मन की गंगा है।
यह माध्यम उस स्वाधीन देश का –
जिसकी ध्वजा तिरंगा है।
हो कान पवित्र इसी सुर में,
इसमें ही हृदय तड़पने दो।।

❖❖❖

प्रिय मेरा उस पार

- मृदुल शर्मा

मैं व्यथित इस पार, प्रिय मेरा उस पार,
बीच में फुफकारती है, रूढ़ियों की धार।
प्रिय मेरा उस पार ।।

करुण क्रन्दन वह नहीं सुन पा रहा है,
यह न जाने रो रहा या गा रहा है।
कहो, कैसे करूँ हल्का मैं हृदय का भार।
प्रिय मेरा उस पार।।

मैं लुटा–सा जड़ा हूँ, निष्क्रिय अकेला,
ज्ञात क्या, आए न आए, मिलन बेला ।
एक भी क्षण और जीना हो रहा दुश्वार।
प्रिय मेरा उस पार ।।

गोद में प्रिय की रुके क्रम श्वाँस का,
हो न जाए मरण इस अभिलाष का ।
एक अवसर'मृदुल'पाऊँ करूँ जी भर प्यार।
प्रिय मेरा उस पार ।।

❖❖❖

सत्कर्मों की राह

- डॉ. दिनेश चन्द्र अवस्थी

जितना ईश्वर ने दिया, उसमें कर निर्वाह।
अच्छी होती है सदा, सत्कर्मों की राह।।
सम्कर्मों की राह, सदा सुख–दुख हैं, आते।
करें ईश का ध्यान, पाश दुख के कट जाते।।
सुख न कुपथ में कहीं, यत्न हम कर लें कितना।
सम्पथ में सुख मिले, उठा लें, चाहे जितना।।

कर्तव्य

पूरे करने चाहिए, मानुष को कर्तव्य ।
सब पंथों का है यही, सीधा सा मन्तव्य।।
सीधा सा मन्तव्य, करो कर्तव्य हृदय से।
आती है, आवाज, यही तो नील निलय से।।
मनचाही उपलब्धि, कर्म को धर्म मानिए।
वादे जितने किए, निभाते उन्हें चाहिए ।।

पढ़ाई

पढ़िए पुस्तक ध्यान से, इससे बढ़ता ज्ञान ।
मानव –पुस्तक से नहीं, कोई ग्रंथ महान् ।।
कोई ग्रंथ महान, इसे जो समझ न पाया ।
धन–दौलत, पद भले, उसे जग ने ठुकराया।।
जितने मिलते व्यक्ति, बात एक सी न करिए।
कुछ कहने से पूर्व, खूब मानव को पढ़िए ।।

सीख

बोलें कम, सोचें अधिक, जो होते विद्वान ।
भर जाते संकोच से, उनका हो गुणगान।।
उनका हो गुणगान,खलों को सीख यही है।
सुनना है, गुण एक, न इसमें दोष कहीं हैं।।
करना जीवन सफल, सत्य–पथ पर ही होलें।
बनना हो विद्वान, अधिक सोचें कम बोलें।।

❖❖❖

युग का देवता

तारों की माला पहने,
एक निष्प्राण देवता,
दिन रात–
तपस्या किया करता है।
वायु, पानी, अग्नि, प्रकाश,
उन सब पर,
उसका अधिकार है।
यदि श्रद्धा से कोई,
उसके चरण छू लेता है –
तो वह क्रुद्ध हो उठता है,
हाथों से हीन होने पर भी–
पकड़ लेता है।
मुख विहीन होने पर भी–
खून चूस लेता है।
और तब तक नहीं छोड़ता
जब तक उसके
प्राण निकाल नहीं लेता।

❖❖❖

उठती हुई दीवार

– कुँवर श्रीप्रकाश सिंह

एक आश्चर्य जनक दीवार है।
जो दिन रात बढ़ती है–
और सम्पूर्ण भू मंडल को,
दो भागों में,
बाँट रही है,
लोगों ने उसे कई बार
तोपों से उड़ा दिया,
बमवर्षा से ध्वस्त कर दिया,
लेकिन वह फिर बनकर खड़ी हो गई ।
विश्व के
वैज्ञानिक चकित हैं।
नेता निराश हैं।
दार्शनिक मौन हैं,
क्योंकि ज्योतिर्विदों ने
यह घोषणा की है,
कि वह भविष्य में उठकर
आकाश को छू लेगी,
और तारों के संसार को भी
दो भागों में विभाजित कर देगी।

❖❖❖

हिन्दी

- डॉ तुकाराम वर्मा

(1)

तम के दल को दलती रहती,
नित ज्ञान–प्रभा बिखरा कर, हिन्दी ।
समता, ममता जग में भरती,
परमार्थ शिवत्व सिखा कर, हिन्दी ।।
जग जीवन में अमरत्व भरे,
सुख–स्नेह– सुधा छलका कर, हिन्दी ।
सब भेद–प्रभेद मिटाती सखे!,
सबको निज कण्ठ लगाकर, हिन्दी ।।

(2)

जब आतप से जग जीव तपें,
तब सावन वारि प्रदायक, हिन्दी।
करुणा रस की बरसात करें,
जग पोषक मूल प्रणायक, हिन्दी।।
बलवर्धक शीत समान सजीव,
सदाशय सर्व सहायक, हिन्दी।
दुख–शोक विनाशक शक्तिमयी,
मधुमास–मणीच प्रचायक, हिन्दी।।

(3)

नवभारत के रचनार्थ सखे!,
हर भाँति समर्थ सहायक, हिन्दी।
समझी परखी यह बात 'तुका',
नवजीवन मूल्य विधायक, हिन्दी।।
युग चिन्तनशील प्रबोध कला,
सहजीवन की परिचायक, हिन्दी।
जग एक कुटुम्ब बने जिससे,
उस आत्मिक प्रेम की नायक, हिन्दी।।

❖❖❖

जीवन का संदेश

- नरेन्द्र श्रीवास्तव

मूक है, मुखरित वाणी आज,
हृदय में आकुलता है, शेष।
कल्पना पंख लिए अभिजात,
खोजता मन जीवन–संदेश।

निशा को जब करता है, प्यार,
नयन मूँदे, सारा संसार।
दीप तारों को, बारम्बार,
सुनाता, कोई जीवन–सार ।

बुझ रहे क्यों, दीपक अनजान,
अभी तो जीवन–जल है, शेष।
भगाओ, जगती से तम सार,
यही है, जीवन का संदेश।

ऊषा की गोदी में जब प्रात,
बिहँसता है, बन शिशु नादान।
भ्रमर गण के कानों में कौन,
सुनाता है, जीवन का गान।

अभी तो आया है, ऋतुराज,
लिए सौरभ अनंत परिवेश।
मधुप तुम गुंजन करो अपार,
यही है, जीवन का संदेश।

रास्ता लम्बा, सँकरा देख,
व्यथित होता जब राही एक।
आस्था के कागज पर कौन,
पढ़ाता, जीवन का ये लेख।

थम गये, क्या, राही इस पार,
अभी तो मंजिल, तेरी शेष।
बनाओ, चलना ही निज ध्येय,
यही है,जीवन का संदेश।

प्यार को झुठलाता जब मीत,
निराशा में खो जाता गीत।
कौन विश्वास लिए अभिराम,
सुनाता, जीवन का संगीत।

हो रहे क्यों कवि तुम निष्प्राण,
अभी सविचार कल्पना शेष।
ध्वनित तुम करो, गीत अविराम,
यही जीवन का संदेश ।

❖❖❖

कैसे गीत सुनायें

प्रश्न कर रहे, पीड़ित,
उत्तर मौन खड़े, अकुलायें,
फिर हम कैसे गीत सुनायें ।

शब्द खड़े हैं, विवश
रंग फीके मुख के,
बीतेंगे न जाने कब–
ये दिन दुख के,
सोच–सोचकर थकते,
क्यों कर, चुभती आज हवायें ।
तब हम कैसे गीत सुनायें।

इक–इक सच पर,
झूठ कई तनते देखे।
खेमे नये–नये,
निशि–दिन बनते देखे ।
देख रहे, हम, आये दिन सब–
रक्तिम होती हुईं दिशायें ।
अब हम कैसे गीत सुनायें ?

❖❖❖

परिवर्तन के स्वर

- अशोक 'अंजुम'

कब तलक हम अनमने सम्बन्ध ढोयें,
कब तलक उफ, बंजरों में प्यार बोयें।

हर कदम पर हो रहा,
विश्वास घायल,
गम करें अट्ठहास ,
और उल्लास घायल।
किन्तु हम नित आस जीवन में पिरोयें ।

कर रहा रंगरेलियाँ,
अन्धकार पल–पल।
रोशनी करने लगी,
चीत्कार पल–पल ।
और किरणें थामकर सर अपना रोयें ।

हो रहा बेशर्म अब,
परिवेश सारा।
चीथड़ों पर मूल्य सब–
करते गुजारा।
आह! परिवर्तन के स्वर हो मौन, सोयें ।

❖❖❖

पहरों, हम सोचते रहे

चक्रपाणि पाण्डेय

शीत भरी सिहरन में मुट्ठी भर धूप लिए,
बरगदिया छाँव तले सिरहाने बाँह दिये।
पहरों, हम सोचते रहे।।

किसको है, वक्त, जो कहानी को बैठ सुने,
कहने को हमने हर बार नये शब्द चुने।
दीवारें, अगर नहीं बहरी जो होतीं तो,
उनसे ही कह लेते, कैसे हैं, दर्द जिए।
पहरों, हम सोचते रहे।।

मेरे, यदि गीतों को अधरों से छू लेतीं,
कुछ दिन जी लेने का आश्वासन,दे देतीं।
शायद, उन कानों तक जाते स्वर पहुँच, जहाँ–
छिपकर, खामोशी के मैंने, विष घूँट पिये।
पहरों, हम सोचते रहे।।

सुधियों की भीड़ भरी अनगढ़, उन राहों में,
पीड़ा की कसकन में, निःश्वासी आहों में।
उलझ–उलझ आशा के, अनजाने वस्त्र फटे,
विश्वासी डोरी से कैसे हम बैठ–सियें।
पहरों, हम सोचते रहे।।

जब उनकी बात चली, सुबह हुई,शाम ढली,
भीगे मन वाली ऋतु वर्षा भी बीत चली।
आई है, दीवाली, कौन आ सजाएगा,
आँगन में, द्वारे पर आँचल में ओट दिये।
पहरों, हम सोचते रहे।।

❖❖❖

जियो, स्वदेश के लिए

डा. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ'

जियो, स्वदेश के लिए, मरो, स्वदेश के लिए,
असँख्य कंठ सूखते, झरो, स्वदेश के लिए।

प्रचण्ड मार्तण्ड तुल्य, ताप झेलते हुए,
तमिस्र–सिन्धु में, प्रभा–तरंग रेलते हुए।
हिमाद्रि–तुंग–विघ्न पंथ के ढकेलते हुए,
कराल–काल–दष्ट्र से, सहर्ष खेलते हुए।

बढ़ो, स्वदेश के लिए, चढ़ो, स्वदेश के लिए।
सुकीर्ति के शिखर, नये, गढ़ो, स्वदेश के लिए।।

कुदृष्टि मातृभूमि पर पड़े जो, आँख फोड़ दो,
त्रिरंग ओर जो उठे,दरिन्द हाथ तोड़ दो।
उदग्र शत्रुओं की दृप्त–गर्दनें मरोड़ दो,
समक्ष मृत्यु आ अड़े, उसे अजेय होड़ दो।

डटो, स्वदेश के लिए, कटो, स्वदेश के लिए,
चुनौतियाँ पुकारतीं, मिटो, स्वदेश के लिए।।

व' देख लो कि सिंहवाहिनी यहाँ मराल पर,
गरल उरग सुकण्ठ में तो गंग–चन्द्र भाल पर।
अरे, यहाँ तो पद्मिनी चढ़ी थी,ज्वाल पर,
शहादतें लिखीं, अमिट, अभी कपाल–काल पर।

भरो, स्वदेश के लिए, झरो, स्वदेश के लिए।
प्रभाकरों, करो प्रभा, करो, स्वदेश के लिए।।

नरत्व के सम्बन्ध स्रस्त, जो कि तोलते चलो,
दिलों को जोड़ते चलो, जहर न घोलते चलो।
स्वराष्ट्र की अखण्डता के बोल, बोलते चलो,
अमोल प्राण–पुष्प लुट गये जो मोलते चलो।

चलो, स्वदेश के लिए, गलो, स्वदेश के लिए,
प्रकाश–शक्तिपुंज बन, जलो, स्वदेश के लिए।
जियो, स्वदेश के लिए, मरो, स्वदेश के लिए,
असँख्य कंठ सूखते, झरो, स्वदेश के लिए।।

❖❖❖

अपने-अपने में

- राकेश 'चक्र'

कहीं कट रही है, चाँदी ही चाँदी,
कहीं हो रही है, बरबादी ही बरबादी ।
कहीं बीमारी और लाचारी में अस्थि–पंजर निकल आए हैं,
न्याय पाने की आशा में,
तलवों में पड़ गयी हैं, ठेठें,
और प्रतीक्षा में सूख गयीं, बूढ़ी ताई और दादी ।

कुछ आज भी पहन रहे हैं,
गाँधी बाबा की खादी ।
बिना दहेज के रह जाती हैं, आज भी शादी ।
किसे देखने की फुर्सत है?
और सुनने की,
सब अपने–अपने में मस्त हैं।

ऊँचे-ऊँचे शिखर

स्पर्श की कल्पना,
खड़ा कर देती हैं, रोंयें,
उसकी छाँव में साँप बना लेते, बड़ी–बड़ी बाम्बियाँ।
वे ग्रास बना लेते,
अनेक कीटों और जड़ी–बूटियों को,
वे इन्हीं शिखरों को पकड़ने की
कोशिश करते हैं या कहें आकाश की ऊँचाई को।
जैसे ही धरती अंगड़ाई–सी लेती,
तभी शिखर चूर–चूर हो जाते हैं–
और कुछ साँप भी,
जो बच जाते हैं, वे खोजते हैं,
नयी–नयी बाम्बियाँ।

❖❖❖

हम अपने मन के हों, स्वामी

- नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'

हम अपने मन के हों, स्वामी, अन्धकार को दूर भगा लें।
यह जीवन वरदान सदृश है,
धर्म–कर्म का आदि सृजन है।
मुक्त हवाओं में साँसें लें,
यद्यपि चारों ओर घुटन हैं।
छोड़ो, कुंठा और निराशा, संघर्षों की ज्योति जगा लें।
हम अपने मन के हों, स्वामी, अन्धकार को दूर भगा लें।।
जो सरिता–जल आगे बढ़ता,
उस को सागर है, मिल जाता।
संकल्पों की शंख–ध्वनि से
नगपति का उर भी हिल जाता।
मार्ग– दिशा दर्शाने वाले, नभ तक ऊँचे स्तंभ लगा लें।
हम अपने मन के हों, स्वामी, अन्धकार को दूर भगा लें।।
कुछ ले लेने से उत्तम है,
मानवता–हित कुछ दे जाना।
पीछे खुद इतिहास चलेगा,
लक्ष्य तलक पग धरते जाना।
प्रेम, योग, सहयोग, प्रगति की, अमर बेल की पौध उगा लें।
हम अपने मन के हों, स्वामी, अन्धकार को दूर भगा लें।।
रोते नयनों के बदले में,
बाँट चलें, हँसना–मुस्काना।
राहत के जलधर से सिंचित,
सब के उर की प्यास बुझाना।
पतझर कितने दिन ठहरेगी, गीत मधुर बासन्ती गा लें।
हम अपने मन के हों, स्वामी, अन्धकार को दूर भगा लें।।

❖❖❖

महाकवि तुलसीदास

जन मानस में नई चेतना ला,
शुचि ज्ञान की ज्योति जगाया किए।
जिससे सब साथ चलें, मिलके,
उर में, वही भावना लाया किए।
प्रभु राम की भक्ति में शक्ति लगा,
उनके ही सदा गुण गाया किए।
दुखी–दीन मलीन जो थे, धरा पे,
तुलसी, उनको ही उठाया किए।

जन्म, धरा पर ले कर के,
सबमें निज प्रेम जगा गए हैं।
सत्यता, शीलता पे चलके, शुभ–
कर्म को ही, अपना गए हैं।
फैली अनेकता थी, जग में,
उनको तुलसी ही मिटा गए हैं।
थे, भटके हुए मानव जो,
उनको शुचि राह दिखा गए हैं।

❖❖❖

राष्ट्रपिता बापू

– महेश प्रसाद पाण्डेय 'महेश'

निज देश को शीघ्र स्वतंत्र करा,
हमसे प्रिय बापू वो खो गये हैं।
अपने शुभ कर्म के द्वारा यहाँ,
परतन्त्र की कालिमा धो गए हैं।
शुचि स्नेह का पाठ पढ़ा करके,
सबमें निज प्रेम को बो गए हैं।
करके व्रत पूरा , वसुंधरा पे,
सुख से, चिर निद्रा में सो गए हैं।

दुखी–दीनों से हाथ, हैं, बापू मिला,
उनकी छिपी पीर टटोलते आये।
व्रत, सत्य, अहिंसा, का,ले करके,
भव–बन्धनों को सदा तोड़ते आये।
सब में नित प्रेम परस्पर हो,
उसी प्रेम के ताग को जोड़ते आये।
परतंत्रता में रहना न कभी,
यही बोल–अमोल हैं, बोलते आये।

❖❖❖

यातना

- डा.दाऊ जी गुप्त

हर रात यातना से थक कर,
सो जाता हूँ।
सुबह जागने पर, फिर उसे–
सामने खड़ी पाता हूँ।
लगता है, यातना को मुझसे–
प्रेम हो गया है।
वह मुझे छोड़ना नहीं चाहती ।
मैं उसे कंधों पर लादकर
कहाँ नहीं गया,
पहाड़ियाँ,पर्वत ,गुफायें,
रेगिस्तान,बर्फीली मैदान–
और चारों ओर
सुगन्धित पौधों से–
घिरी हुई, मखमली घास–
के बिछौने पर–
लेकिन उसे कहीं कुछ पसन्द नहीं आया,
वह सिर्फ मुझसे ही चिपकी रही।
मैंने उसे आइफल टावर से–
नीचे गिरा दिया,
पर नीचे लिफ्ट से निकलती ही–
वह फिर मेरे कंधों पर चढ़ गई।
पीसा की हिलती हुई दीवारों पर –
वह हार कर उतरी नहीं,
ठहाका लगा कर हँसने लगी।
पिरामिड और ताजमहल भी
उसे आकर्षित नहीं कर सके,
मैंने उसे नारियल थमाकर,
चुनरी ओढ़ा कर,
संगम में तैरा दिया था–
लेकिन नाव से उतरते ही, सामने के–
शेरों वाली लाट के किले से निकलकर,
वह फिर उसी तरह मेरे साथ हो गयी।

❖❖❖

तृष्णा का मान

- विजय शंकर शुक्ल

मैं सुधा–कलश ले अपनी प्यास बुझाऊँ,
मुझको तृष्णा का मान नहीं खोना है।
धरती के जीवन से मनुष्यता फूली,
मानवता को वरदान, धरा की धूली।
चरणों की रज मानव मस्तक की शोभा,
भूतल के ही श्रृंगार प्राप्त–गोधूली।
नयनों के जल से अधर हास का विनिमय,
यह जन्मजात अधिकार नहीं खोना है।
मुझको तृष्णा का मान नहीं खोना हैं।
है, काल–क्षेत्र का यह विस्तार अपरिमित,
जो हुआ कर्मवश मृत्यु–बीज से पूरित।
रस–स्निग्ध जन्म–अंकुर इससे ही फूटे,
मानवता का इतिहास इसी से निर्मित।
शीताताप के मीलित प्रभाव में पलकर,
पृथ्वीपूतों को अमर नहीं होना हैं।
मुझको तृष्णा का मान नहीं खोना हैं।
नीरद– माला में तड़ित–हास सा सुख हो,
जीवन के प्रति उत्साह करे, उन्मुख जो।
पथ की दुर्गमता से न लुप्त हो साहस,
झिलमिल सुदीर्घ निबन्ध मार्ग सम्मुख हो।
विश्रान्ति व्यस्त हो नहीं चरणगति मेरी,
पथराज का यह श्रृंगार, मुझे सोना है।
मुझको तृष्णा का मान नहीं खोना हैं।

❖❖❖

काव्य की सर्जना

- कृष्ण मुरारी 'विकल'

सृजित शब्द–छवि लेखनी–तूलिका से,
कला काव्य–भाव की, किया अर्चना।

वन्दना में जिसे नित्य–प्रति था, बुलाया,
नमन के लिये सर्वदा शिर झुकाया।
सतत साधना में, रहा रत निरन्तर,
लिखे गीत अगणित, जिन्हें गुनगुनाया।
द्वार मन का खुला, मैल सारा धुला,
फिर निखरती गयी सिद्धिदा साधना।

लेखनी से बरसती रही भावना,
पूर्ण होती रही कल्पना–कामना।
शब्द बरबस अधर से फिसले रहे,
गीत–गंगा बही, तृप्ति–आस्वादना।
बात ही बात में छन्द पूरा हुआ,
यों अनायास ही काव्य की सर्जना।

प्रीति के गीत हमको न अच्छे लगे,
संकटों से हमारे हैं, रिश्ते सगे।
आज संत्रास–कुण्ठा–घुटन पल रही,
प्रेम के भाव अब तक न सोकर जगे।
काव्य की देख लय, भाग जायेगा, भय,
जीत हो गीत की, भ्रान्ति की वर्जना।।

❖❖❖

अमावसों के संरक्षण में

- राजेन्द्र वर्मा

मन तो नहीं, मगर मजबूरी,
इस मकान को घर कहना है।

देवासुर संग्राम छिड़ा है,
नयी–नयी घातें–प्रतिघातें।
दिवा–स्वप्न जैसी लगती हैं,
'बापू' के सुराज की बातें।
धन की चाहत, सिंहासन को,
सिंहासन धन का गहना है।

चाहे जितने छंद रचें, हम,
गीत, गजल या ठुमरी गाएँ।
कोई फर्क नहीं पड़ता है,
चाहे जो भी राग सुनाएँ।
'तानसेन– गंधर्व को भी,
फिल्मी, हो–हल्ला सहना है।

जोकर हैं या जाहिल हैं, जो,
भोजपत्र में नाम उन्हीं का।
बाँट रहे हैं, बुद्धि सभी में,
जैसे हो, यह काम उन्हीं का।
अमावसों के संरक्षण में,
पूनम को हँसते रहना है।

❖❖❖

आञ्जनेयं-नमामि

- डा. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

(1)

ओज– तेज, ब्रह्मचर्य–के, पौरुष के प्रतिमान,
ज्ञान के निधान, अवधूत को प्रणाम है।
मन के समान वेगवान, मूर्त स्वाभिमान,
बुद्धि में, विवेक में अकूत को प्रणाम है।
एकादश रुद्र के प्रणम्य अवतार,धीर,
मारुत के पूत, भक्तिपूत को प्रणाम है।
रख शीश चरणों में करता 'अनन्तराम',
राम को प्रणाम, रामदूत को प्रणाम है।।

(2)

लाल–लाल उत्तरीय, लाल–लाल अधरीय,
लाल–लाल उपबीत–माल को नमन है।
लाल–लाल ज्वाल से जलाने वाली लंकपुरी,
विकराल बालधि विशाल को नमन है।
आधि–सिंहिका के,व्याधि– अक्षय के क्षय, छद्म–
कालनेमियों के महाकाल को नमन है।
राम की प्रसन्नता के लिए लाल रंग रंगे,
अंजना के लाल–लाल, लाल को नमन है।

❖❖❖

भागीरथी जल चाहिए

- श्याम नारायण श्रीवास्तव

शतवर्ष जीवन हो न हो, जीवन्त पल–पल चाहिये,
अन्तर्हृदय नव चेतना, नवसृजन अविरल चाहिये।
सागर किया, लघु बिन्दु को, कण को बना, भूधर दिया,
लघु जीव को आशीष दे, तूने बना, मानव दिया ।
तेरे लिये हर साँस माँ, तेरे लिये निःश्वास माँ,
तेरी कृपा का भी सदा, पर साथ सम्बल चाहिये।
है, कामना, जब खिले, जीवंत, मुस्काता रहे,
सूखा रहे, चाहे हरा, सौरभ–विभव देता रहे।
तृण–मूल के उर जो धरा, वन–फूल के उर जो भरा,
निस्पृह निरन्तर प्रवाह जो, वह प्रीति–परिमल चाहिये।
सावन झरे, भाँदों भरे, चातक मगर प्यासा रहे,
क्या सिन्धु, क्या पोखर, अगर अवशेष अभिलाषा रहे।
जिससे तृषा की तृप्ति हो, शुचि भाव भी अभिसिक्त हो,
दो बूँद हों चाहे भले, भागीरथी–जल चाहिये।

कर्म महान कहा जाता है

जाति, पंथ, कुल नहीं, बुधवार, कर्म महान कहा जाता है,
जल–जल स्वयं, जिलाये जग जो, वह दिनमान कहा जाता है।
यूँ तो समय–पृष्ठ अंकित, स्वर्णिम नामों की कमी नहीं है,
जग जिनकी गाथायें गाये, बलधामों की कमी नहीं हैं।
पर जो निर्बल में बल भर दे, भयातुरों को निर्भय कर दे,
बिगड़ी बात बना दे, बढ़कर, वह हनुमान कहा जाता है।
जिसने जैसे कर्म किये हैं, उसको वैसे फल मिलते हैं,
विस्फोटों को करने वाले, विस्फोटों से ही जलते हैं।
तूफानों के बन्द किवाड़ें, फागुन को वन्दन, अभिनन्दन,
मान बढ़ाये जो औरों का, वह मेहमान कहा जाता है।
उगें न अंकुर, फलें न फल, पर व्यर्थ नहीं जाता कोई श्रम,
हर प्रयत्न लिखता जाता है, सोपानों के नित नूतन क्रम।
पुजती रही, पुजेगी युग युग, त्याग–दया–करुणा की गाथा,
कण–कण में कल्याण लिखे जो, वह भगवान कहा जाता है।

❖❖❖

शत बार नमन, शत बार नमन

- श्रीमती कमलेश श्रीवास्तव

जय कृपायतन, जय दनुज–दलन। शत बार नमन, शत बार नमन।
जाने कितने युग बीत गए, आतप, वर्षा औ शीत गए,
प्रभुता का मोह–पास गहरा, माया धरती नित रूप नए।
मैं स्वार्थ–सिद्धि में रही मगन, बुझ सकी न मन की प्यास सघन।
जय कृपायतन, जय दनुज–दलन, शत बार नमन, शत बार नमन।।

ये कुम्भ कर्ण, ये मेघनाथ,रावण, अहिरावण, महिरावण,
मारीच, ताड़का कितने ही, करते उजाड़, जग का कानन,
ऐसा कुछ कर दो कमल नयन, हो, काया कल्पित, परिवर्तन।
जय कृपायतन,जय दनुज–दलन,शत बार नमन, शत बार नमन।।

धारण करके फिर धनुष–बाण, श्रीराम, हरें, जग सकल त्राण,
तीनों लोकों में आप प्रभो, कहलाते हो, करुणा निधान,
पावन हो जाए अन्तर्मन, प्रस्तर–उर में जाग्रत धड़कन।
जय कृपायतन, जय दनुज–दलन, शत बार नमन, शत बार नमन।।

ये काम क्रोध,ये राग–द्वेष, ये लोभ–लालसा के पुतले,
बसते हैं, मन के आसपास, कर रहे, अँधेरा दिया तले,
हों, छिन्न–भिन्न सब भव बंधन, शुभ संकेतों का अनावरण।
जय कृपायतन,जय दनुज–दलन, शत बार नमन, शत बार नमन।।

मुझमें शबरी सी भक्ति नहीं, केवट सी पद अनुरक्ति नहीं,
तुलसी सा है,दासत्व नहीं, हनुमन्त लला सी शक्ति नहीं ,
है,विकृत लौह सा मेरा मन, तुम पूर्ण ब्रह्म, मैं हूँ, रजकण।
जय कृपायतन,जय दनुज–दलन, शत बार नमन,शत बार नमन।।

ऐसा कर दो, भगवान राम, मैं करूँ, आप का सतत ध्यान,
हर श्वास राम मय हो जाए, चहुँ दिश गूँजे तव यशोगान ,
इस भाँति करूँ साहित्य सृजन, हर शब्द आपका करे भजन।
जय कृपायतन, जय दनुज–दलन, शत बार नमन,शत बार नमन।।

❖❖❖

अनुरागी प्रिय

साँझ पहर,
विरक्ताओं के मध्य,
अनुरक्त मन,
ढूँढ़ता है,
अनुरागी प्रिय को।
आकाश में,
बनते–बिगड़ते बादलों में,
उड़ते पक्षियों में,
मुस्कराते फूलों में,
उन्मुक्त आतीं हवाओं में,
किताबों में लिखे
शब्दों में,
साँझ प्रहर,
विरक्तताओं के मध्य–
अनुरक्त मन,
ढूँढ़ता है,
अनुरागी प्रिय को!

❖❖❖

अनकहे शब्द

– डा. ममता शुक्ला

बन्द होंठों से कहे
कुछ शब्द,
अनजाने से,
हृदय पटल पर है,अंकित,अब तक।,
किन्तु आज
अनवरत मन को,
स्पर्श कर रहे हैं–
वो, कुछ शब्द।
बन्द होंठों से कहे,
कुछ अनकहे शब्द।
बरसात की बूँदों से,
वे शब्द –
मन, शरीर, आत्मा से –
भिगोते, वे शब्द।
बन्द होंठों से कहे,
तुमने जो,
कुछ अनकहे शब्द,
जीने की जिजीविषा बढ़ा रहे हैं।

❖❖❖

भूले हुए हो

- इन्दिरा मोहन

जड़ हुए आँगन सजीले,
शब्द नारों से हठीले,
कौन धीरज दे सकेगा,
बंधु, तुम भूले हुए हो।

ताल सी यमुना हुई है,
सोच का पानी सड़ा है।
शुद्ध जल की चाह सपना,
यों शहर इतना बड़ा है।

एक अँजुरी को तरसते,
झोपड़ी में दृग बरसते ,
प्यास प्यासी आँख ताके,
बंधु, तुम भूले हुए हो।

दौड़ती कारें, अनवरत,
प्रगति की बातें निराली,
दूरियाँ कम हो गई हैं,
प्रेम का घर किन्तु खाली।

नेह के दो बोल चाहे,
हाथ धर कुछ तो सराहे,
गाँव–घर की कौन पूछे?
बंधु, तुम भूले हुए हो।

❖❖❖

वो बहारों के दिन

तेज रफ़्तार
शहर की फ़िजा में,
ढूँढता है, मन,
वो बहारों के दिन।
नीम उजालों के आँचल में,
मीठी सुबह शरमाई हुई ।
घर की दीवारें, चुपके–चुपके,
धूप में नहाई हुईं ।
घने दरख्तों के साये ,
खामोश फिज़ाएँ बहकीं–सी।
झरनों की सरगम यहाँ–वहाँ,
हर तरफ वादियाँ महकीं–सी।
चेहरों पर गहरा अपनापन,
आँखों में नेह का दर्पन,
हँसते–गाते पल–छिन।
वो बहारों के दिन।

❖❖❖

वो चाँदनी रातें

- डा.ऋचा सत्यार्थी

याद फिर आने लगे,
एक अरसे बाद,
वो सावन, वो बातें/वो चाँदनी रातें।
झिलमिल रेशमी सितारों के,
दूर तक काफ़िले ठहरे।
रिश्तों की नर्म–नर्म जंजीरें,
दिलों पर प्यार के पहरे।
उम्र के कागजों पर,
विश्वासों के चेहरे।
भीगी–भीगी आँखों में,
सपनों के रंग सुनहरे।
महकता–भीगता वातावरण,
होंठों पे गीतों का सावन।
रिमझिम करतीं बरसातें।
वो चाँदनी रातें।

❖❖❖

बँटवारा

- श्रीमती सुनीता यादव

आज इकट्ठा है, पूरा परिवारा,
धन दौलत का होगा, बँटवारा।
ये तू ले ले, ये है,तेरा,
यह मुझे मिले, ये मेरा।
किसको कितना ज्यादा मिले, हमारा,
सब बेटे एक जुट हो करें, विचारा।
खेत–खलिहान बँट गए, अब गायों की बारी,
बछिया गायों से पूछें, अब होंगे हम न्यारी ।
सब कुछ बँट गया, अब माँ–पिता की तैयारी,
छः महिना पिता तुम्हारा,छः महिने माँ हमारी।
महिने–महिने बाँटे जा रहे,
हम पाँच–पाँच पाले।
तुम से दो नहीं पाले जा रहे।।
दादा और मुन्ने की बाती,
बुढ़ापा–बचपन का साथी ।
छोटे का नाती बोला, दद्दू मेरे हिस्से में आए।
फूटा, चिरौंजी और बत्तू लाए।
दादा–दादी मुझको दे दो,
बाकी सब तुम ले लो।
दादी लोरी सुनाएगी।
दादा की ताली गीत गायेगी।
वे देंगे ढेरों, आशीर्वाद, सुपथ पर चलने की सीख,
तुम सब दौलत के भिखारी, मुझे मिले अपनो की भीख।
मुझको माँ ने यह सिखाया,
बार–बार यह जताया।
बुजुर्गों की जो सेवा करता,
वो मुसीबत से नहीं डरता।
हर सुख उसके होते, हर खुशी उसे मिल जाती,
जीवन जीने को मिलता, जिंदगी नहीं भटकाती।
मैंने विचारा तुम भी विचारो।
अपनों को बँटवारे में न डारो।

❖❖❖

बृद्धाश्रम

- श्रीमती साधना श्रीवास्तव

बृद्धाश्रम में बढ़ रही दिन प्रतिदिन भीड़,
क्योंकि अब तिनके से बिखर रहे हैं, उनके नीड़।
टूट रहे अब घर–परिवार और उनके संसार,
नहीं रह गया, अब बच्चों को, माँ – बाप से प्यार।
आपस में होती है, उन लोगों में तकरार,
बुजुर्गों को कर देते हैं, संबंधी दर किनार।
खत्म हो रहे हैं देखो, बच्चों के संस्कार,
लगते हैं बच्चों को अब, माँ – बाप भार।
भूल गए वो, माँ– बाप का–स्नेह और दुलार,
उनको है केवल माँ– बाप की सम्पति से प्यार।
व्यस्त हैं बच्चे, करते हैं, अपने लिये व्यापार,
माँ– बाप को छोड़ चले जाते, सात समंदर पार।
माँ– बाप तो अब भी करते हैं, बच्चों से प्यार,
पर बच्चे नहीं मानते, उनका कोई भी आभार।
माँ– बाप प्यार में दे देते हैं, अपनी पूरी सम्पति,
खाली हाथ रह जाते हैं, जब आती है कोई विपत्ति।
बुजुर्गों को कर देते हैं, उनके बच्चे बेसहारा,
तब मिलता है उनको बृद्धाश्रम का सहारा।
उनके अंतर्मन में पहुँचती है, बहुत पीड़ा,
बृद्धाश्रम उठाता है उनके दुःख दूर करने का बीड़ा।
बृद्धाश्रम में रहते हैं एक ही मर्ज के लोग,
बन जाते हैं हमदर्द जब होता है किसी को रोग।
जब किसी को आते हैं, अपने परिजन, याद,
मन की शान्ति के लिये करते हैं, ईश्वर से फरियाद।
सब मिलकर करते, एक–दूसरे का मनोरंजन,
करते हैं,हरिभजन और दूर करते अपना रंज।
जिससे लगा रहता है उनका बृद्धाश्रम में मन,
भूलना चाहते हैं, अपना दर्द, जिससे स्वस्थ रहे, तन।
सबक सीखना होगा, आज, सबको,
चेहरा दिखाना होगा, अपना, रब को।
बच्चे बनेंगे, भविष्य में, माँ– बाप,
न मिले बुढ़ापे में उन्हें कोई संताप।

❖❖❖

मैं छोटा-सा एक सिपाही

गिरते–गिरते सम्भल गया हूँ,
मैं रपटीले पथ का राही।
युद्ध भूमि है, मेरी दुनिया,
मैं छोटा –सा एक सिपाही।

एक अटल विश्वास सहारे,
जीवन पथ पर जूझ रहा हूँ।
जन्म–मृत्यु की कठिन पहेली,
जैसे, प्रतिपल बूझ रहा हूँ।
व्यवधानों के शैल काटकर,
राह बनाई है, मनचाही।

कण–कण, तृण–तृण,शूल–शूल में,
एक रूप वैभव पाया है।
हँसते–हँसते गिरा भूमि पर,
जो शूलों पर मुस्काया है।
मानवता की पूछ न कोई
पशुता ही जा रही सराही।

❖❖❖

करुण त्रासदी

– भारतेन्दु मिश्र

बियाबना सन्नाटा, चीखती नदी,
आँखों से फिसल पड़ी, करुण त्रासदी।
चाँद भी उगा था,
भारवि जैसा पीला,
स्याह रात में,
सिमटा था, आँचल नीला।
खुली–खुली पलकों पर, चिहुँकता अँधेरा।
होनी या अनहोनी जो कि थी, बदी।
क्षण भर का कोलाहल,
ताली की गड़–गड़।
सहम उठा, हर्ष,
शेष, धाँय–धाँय, धड़–धड़।
घुटी–घुटी धड़कन से, सिसकता सवेरा।
शप्त कोख ने मानों साँस तक न दी।
मरे हुए बेटे की,
लाश को लिए।
डग दो डग साथ,
कई पैर चल दिए।
कीच, हवा, पानी, बादल दल ने घेरा,
और पूर्णिमा ने चिनगी उछाल दी।।

❖❖❖

डर रहा हूँ, मैं

सुबह से शाम तक गश्ती में फिर रहा हूँ, मैं,
बीच मझधार के कश्ती है, डर रहा हूँ, मैं।

अभी तलक नहीं कोई हमसाया था,
आज है तो भी बिछड़ने से डर रहा हूँ, मैं।

कौन चलता है, साथ–साथ, कारवाँ की तरह,
सुबह की नब्ज पर, हर साँस भर रहा हूँ, मैं।

हमारी सम्त से गुजरेगी, जिन्दगी कैसे,
घुटन है, इतनी, कि जी कर भी मर रहा हूँ, मैं।

'बसन्त' तेरी तरह और कौन जीता है,
दर्द का अश्क सरे शाम पी रहा हूँ, मैं।

मुझे नहीं कोई शिकवा न गिला है, कोई,
मिला है, जो भी जिन्दगी से, जी रहा हूँ, मैं।

या खुदा! देख, मेरी नब्ज न थम जाए, कहीं,
'बसन्त' दर्द,बर्दास्त बड़ा दर्द कर रहा हूँ मैं,

❖❖❖

मेहमान हो तुम

– पं. प्रवीण त्रिपाठी

ये शब, आज की नाम कर दी, तुम्हारे,
बहुत खास मेहमान हो, तुम, हमारे।

ये एहसास हो जाएगा, अब से तुमको,
कि किस दिलनशीं से लगी नज़र, प्यारे।

ख्यालों में पाओगे, जब शब चढ़ेगी,
या जब शब की कश्ती लगेगी, किनारे।

अगर खास है, कुछ, तो सोने न देंगे,
रहोगे खड़े, दिल का आँगन बुहारे।

ये है, बात अपनी, ये अपना मकां है,
चले आए, जब कोई भी, दिल पुकारे।

'बसन्त' इसको पढ़कर भुला दीजिएगा,
नहीं चाहते हम कोई दिल में धारे।।

❖❖❖

जीवन सँवरता

- जगदीश शुक्ल

गुरु के गुरुत्व का किसे हुआ समस्त ज्ञान,
किन्तु रंच ज्ञान से भी जीवन सँवरता।
द्रोण देना चाहते हैं शिष्य की जो चाहत है,
किन्तु कहाँ अर्जुन सा, तप कौन करता।
गुरु की कृपा से भाग्य लेख भी बदल जाता,
शिष्य हो कबीर सा जो शीश पग धरता।
शिष्य कर्ण सा महान, गुरु हों परशुराम,
देर लगती न पाते सूर्य सी प्रखरता।

ज्ञान की प्रवरता

गुरु–गरिमा का तेज, लाखों रवि से भी तेज,
गुरु चाहे, शिष्य पाये ज्ञान की प्रवरता।
सब देना चाहता है जो भी उसके है, पास,
किन्तु पाता वही सब योग्य जो उतरता।
देता सद्मार्ग पे चला के सदा उच्चपद,
शिष्य भाग्यवान मान शीश पग धरता।
गुरु के प्रताप से विरंचि मद चूर होता,
शिष्य खरे स्वर्ण सा, है, तप के, निखरता।

❖❖❖

पास आ जाते

- कृष्ण कुमार वर्मा

वेदना के ही स्वरों ने, मोह में बरबस पुकारा,
वेदना बढ़ती गयी, सम्मुख न जब तुमको निहारा।

वेदना मन में, नयन में है, उमड़ती अश्रु धारा,
हो गयी दयनीय स्थिति, क्या नहीं तुमने विचारा।

बिन विचारे हाय हमसे, कर लिया, तुमने किनारा,
तुम बिना जीवन अधूरा और हम हैं, बेसहारा।

हाय रे! निष्ठुर हृदय,क्यों हो गया इतना तुम्हारा,
आज निर्मोह हुये क्यों, और क्यों हमको बिसारा।

पास आ जाते न कुछ इसमें बिगड़ जाता तुम्हारा,
मन तुम्हें लखकर प्रफुल्लित हो गया होता हमारा।

लुप्त स्वर मम हो रहा,सुख सुप्त लखि संसार सारा,
और नीरव शान्त निशि में, मन मलिन होता हमारा।

बढ़ रही विरहाग्नि, इससे यदि नहीं तुमने उबारा,
तन झुलस कर राख भी हो जायेगा, प्रियतम हमारा।

आज 'कृष्ण' नितान्त बोझिल, बन गया जीवन हमारा,
साँस अंतिम, आस दर्शन मात्र, अब दे दो सहारा।

❖❖❖

धरती स्वर्ग बनाओ

- विष्णु कुमार शर्मा कुमार

जन्म शताब्दी वर्ष आ गया, जागो और जगाओ।
गुरुवर का सपना सच करने, मिलकर कदम बढ़ाओ।

ज्ञान यज्ञ के दीप जल रहे, समय बदलने वाला है,
जीर्ण–शीर्ण प्राचीन हटेगा, जग मधुवन बनने वाला है।
समता–ममता और मनुजता, सदगुण श्रेष्ठ बढ़ाओ।
गुरुवर का सपना सच करने..... ।।

सूक्ष्म जगत की दिव्य प्रेरणा, मानव मन बदल रही है,
तरुणों की तरुणाई जगकर, प्रज्ञा हित मचल रही है।
संस्कार, सद्भाव, श्रेष्ठता, दे सन्मार्ग चलाओ ।
गुरुवर का सपना सच करने .....।।

स्वाध्याय, संयम, सेवा में, रहे ना कोई पीछे,
मानवता की फुलवारी को, स्नेह बिन्दु से सीचें।
प्यार और सहकार भाव ले, धरती स्वर्ग बनाओ ।
गुरुवर का सपना सच करने .....।।

श्रद्धा सजल,प्रखर प्रज्ञा के, आदर्श निभायें मन से,
पीड़ा–पतन मिटा देने हित, तत्पर हों मन– तन से ।
परिवर्तन के महापर्व में, साधन समय लगाओ।
गुरुवर का सपना सच करने .....।।

❖❖❖

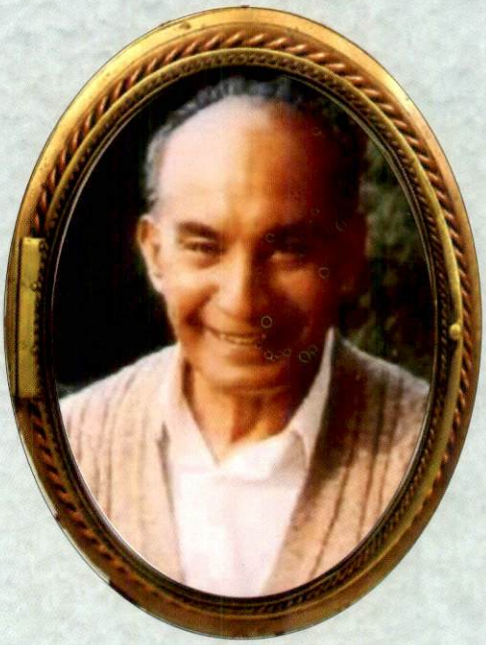

गुरु भक्त सिंह भक्त

जन्म- 7 अगस्त,1893 निधन- 17 मई -1983

तेरी 'ना' में 'हाँ' झाँक रहा है, अधर मौन, दृग बोल रहे,
मुस्कान मोहनी मानस में, बस बीज प्रेम के बोती है।

जीवन-धारा क्या बीच बही, हम तुम हो गए, किनारे दो,
दे मिला, पुनः बढ़-बाढ़ सलिल, यह दुविधा, हमें डुबोती है।

जब आँख किसी की तीन हुईं, तब छार कहीं, वह मार हुआ,
दृग चार तुम्हारे होते ही, वह जी उट्ठा, साकार हुआ।।

सृजन स्मरण

डा. श्रीपाल सिंह 'क्षेम'

जन्म- 2 सितम्बर, 1922 निधन-22 अगस्त, 2011

मैं व्यथाओं में पला हूँ, वेदना संसार मेरा।
एक तरु की शुष्क शाखा पर, बिसुध मुस्कान फूटी,
वह मुकुल मैं, आदि से जिस पर अटल तम-राशि छूटी।
सान्ध्य किरणों ने किया है, अश्रु से श्रृगांर मेरा।।
तिमिर-अंचल के तले, मैंने, प्रथम है, आँख खोली,
कसक को उर में दबाकर, की, सतत जीवन-ठिठोली।
शूल ने, संघर्ष से ही, है किया, उपचार मेरा।।